131777 - ग़ैर-मुस्लिम के प्रति मुसलमान का कर्तव्य

प्रश्न

ग़ैर-मुस्लिम के प्रति मुसलमान का क्या कर्तव्य है, चाहे वह मुसलमानों के देश में रहने वाला ज़िम्मी (संरक्षित गैर-मुस्लिम) हो, या अपने देश में रहने वाला हो और मुसलमान उसके देश में रह रहा हो ? जिस कर्तव्य की मैं व्याख्या चाहता हूँ, वह सभी प्रकार के व्यवहारों से संबंधित है—सलाम करने से लेकर ग़ैर-मुस्लिम के त्योहारों में उसके साथ भाग लेने तक। और क्या उसे केवल कार्यस्थल का मित्र बनाया जा सकता है ? कृपया मार्गदर्शन करें। अल्लाह आपको उत्तम प्रतिफल प्रदान करे।

विस्तृत उत्तर

हर प्रकार की प्रशंसा और गुणगान केवल अल्लाह तआला के लिए योग्य है।.

“एक मुसलमान के ग़ैर-मुस्लिम के प्रति कई कर्तव्य हैं :

पहला : अल्लाह महिमावान की ओर बुलाना। अर्थात् जब भी उसके लिए संभव हो और जहाँ तक उसके पास ज्ञान और समझ हो, उसे अल्लाह की ओर बुलाए और उसके सामने इस्लाम की सच्चाई को स्पष्ट करे। क्योंकि यह अपने देशवासियों तथा जिन यहूदियों, ईसाइयों या अन्य मुश्रिकों से उसका संपर्क हो, उनके साथ की जाने वाली सबसे बड़ी भलाई और सबसे महान उपकार है। क्योंकि नबी सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया : "जो कोई किसी भलाई की ओर मार्गदर्शन करे, उसे भी उतना ही प्रतिफल मिलता है जितना उस पर अमल करने वाले को मिलता है।"

इसी तरह, जब नबी सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने अली रज़ियल्लाहु अन्हु को खैबर भेजा और उन्हें आदेश दिया कि यहूदियों को इस्लाम की ओर आमंत्रित करें, तो उनसे फरमाया : "अल्लाह की क़सम ! यदि अल्लाह तुम्हारे माध्यम से एक व्यक्ति को भी हिदायत दे दे, तो यह तुम्हारे लिए लाल ऊँटों (सबसे मूल्यवान संपत्ति) से भी अधिक उत्तम है।"

इसके अलावा, नबी सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फरमाया : "जो कोई किसी हिदायत की ओर बुलाए, उसे उन सभी लोगों के बराबर प्रतिफल मिलेगा जो उसकी बात का अनुसरण करेंगे, और इससे उनके प्रतिफल में कोई कमी नहीं होगी।"

अत: उसे अल्लाह की ओर बुलाना, उस तक इस्लाम का संदेश पहुँचाना और इस विषय में उसे सच्ची नसीहत करना सबसे महत्वपूर्ण कार्यों तथा अल्लाह की निकटता प्राप्त करने के सर्वोत्तम कामों में से एक है।

दूसरा : उस पर किसी प्रकार का अत्याचार न करे — न उसके प्राण के संबंध में, न उसके धन के संबंध में और न उसकी प्रतिष्ठा के संबंध में। यदि गैर-मुस्लिम ज़िम्मी, मुस्ता'मन (संरक्षण प्राप्त व्यक्ति) या मुआहद (संधिबद्ध व्यक्ति) है, तो उसके अधिकार पूरे किए जाएँ। उसके धन के संबंध में उस पर अत्याचार न किया जाए — न चोरी करके, न विश्वासघात करके और न धोखा देकर। इसी प्रकार उसके शरीर के संबंध में भी उस पर अत्याचार न किया जाए — न उसे मारकर और न उसकी हत्या करके। क्योंकि उसका मुआहद, या ज़िम्मी, या मुस्ता'मन होकर उस देश में रहना इन सभी बातों से उसकी सुरक्षा का कारण है।

तीसरा : उसके साथ खरीद-बिक्री, किराए पर लेना-देना तथा इसी प्रकार के अन्य लेन-देन करने में कोई आपत्ति नहीं है। क्योंकि विश्वसनीय रूप से प्रमाणित है कि अल्लाह के रसूल सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने मूर्ति की पूजा करने वाले काफ़िरों से खरीदारी की, और यह भी प्रमाणित है कि आपने यहूदियों से खरीदारी की। यह भी एक प्रकार का लेन-देन है। यह भी प्रमाणित है कि जब आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम का देहांत हुआ, उस समय आपके परिवार के लिए खाद्य सामग्री के बदले आपका कवच एक यहूदी के पास गिरवी रखा हुआ था।

चौथा : सलाम के संबंध में—मुसलमान स्वयं उसे पहले सलाम न करे, लेकिन यदि ग़ैर-मुस्लिम सलाम करे तो उसका उत्तर दे।

क्योंकि नबी सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया : "यहूदियों और ईसाइयों को पहले सलाम न करो।" तथा आपने फ़रमाया : "जब अह्ल-किताब तुम्हें सलाम करें तो तुम कहो : 'व-अलैकुम' (और तुम पर भी)।"

अत: मुसलमान काफ़िर को स्वयं पहले सलाम न करे। लेकिन यदि कोई यहूदी, या ईसाई या अन्य ग़ैर-मुस्लिम पहले सलाम करे, तो मुसलमान उत्तर में कहे : "व-अलैकुम" (और तुम पर भी)। जैसा कि नबी सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने निर्देश दिया है।

ये मुसलमान और ग़ैर-मुस्लिम के बीच पारस्परिक अधिकारों में से हैं।

इन्हीं अधिकारों में से एक अच्छा पड़ोसी व्यवहार भी है। यदि गैर-मुस्लिम आपका पड़ोसी हो, तो उसके साथ अच्छा व्यवहार करें और पड़ोसी होने के कारण उसे किसी प्रकार की हानि न पहुँचाएँ। यदि वह निर्धन हो, तो उसे दान दें, उसे उपहार दें और जिन बातों में उसका लाभ हो उनमें उसे उचित सलाह दें। क्योंकि ये सब ऐसे कार्य हैं जो उसके हृदय में इस्लाम के प्रति रुचि उत्पन्न करने तथा उसके इस्लाम स्वीकार करने का कारण बन सकते हैं।

और इसलिए भी कि पड़ोसी का अपना अधिकार होता है। अल्लाह के रसूल सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया : "जिब्रील (अलैहिस्सलाम) मुझे पड़ोसी के अधिकार के बारे में लगातार ताकीद करते रहे, यहाँ तक कि मुझे लगा कि शायद

वह उसे उत्तराधिकारी भी बना देंगे।" (इस हदीस की प्रामाणिकता पर बुखारी व मुस्लिम सहमत हैं।)

यदि पड़ोसी ग़ैर-मुस्लिम हो, तो उसे पड़ोसी होने का अधिकार प्राप्त है। और यदि वह ग़ैर-मुस्लिम होने के साथ-साथ रिश्तेदार भी हो, तो उसके दो अधिकार हैं : पड़ोसी होने का अधिकार और रिश्तेदारी का अधिकार।

पड़ोसी के अधिकारों में यह भी है कि यदि वह निर्धन हो, तो उसे ज़कात के अतिरिक्त अन्य सदक़ा दिया जाए। क्योंकि अल्लाह तआला का फ़रमान है :

لَا يَنْهَاكُمُ اللَّهُ عَنْ الَّذِينَ لَمْ يُقَاتِلُوكُمْ فِي الدِّينِ وَلَمْ يُخْرِجُوكُمْ مِنْ دِيَارِكُمْ أَنْ تَبَرُّوهُمْ وَتُقْسِطُوا إِلَيْهِمْ إِنَّ اللَّهَ يُحِبُّ الْمُقْسِطِينَ

الممتحنة/8

"अल्लाह तुम्हें उन लोगों के साथ भलाई और न्याय करने से नहीं रोकता जिन्होंने धर्म के कारण तुमसे युद्ध नहीं किया और न तुम्हें तुम्हारे घरों से निकाला। निश्चय ही अल्लाह न्याय करने वालों को पसंद करता है।" (सूरत अल-मुम्तहिना, आयत 8)

तथा सहीह हदीस में अस्मा बिन्त अबू बक्र (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से वर्णित है कि उनकी माता, जो उस समय मुश्रिक थीं, नबी सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम और मक्का वालों के बीच हुई संधि के समय उनसे सहायता लेने आईं। तो अस्मा (रज़ियल्लाहु अन्हा) ने नबी सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम से पूछा कि क्या वह अपनी माता के साथ संबंध बनाए रखें और उनके साथ अच्छा व्यवहार करें ? तो नबी सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया : "हाँ, उनके साथ संबंध बनाए रखो।"

जहाँ तक उनके धार्मिक त्योहारों के उत्सवों का संबंध है, तो मुसलमान उनके त्योहारों के समारोहों में भाग नहीं लेगा।

हाँ, यदि उनके यहाँ किसी की मृत्यु हो जाए, तो उन्हें संवेदना प्रकट करने (ताज़ियत) में कोई आपत्ति नहीं है। वह उनसे इस प्रकार के शब्द कह सकता है : "अल्लाह आपकी इस विपत्ति की भरपाई करे।" या "अल्लाह आपको इससे बेहतर उत्तराधिकारी प्रदान करे।" या इसी प्रकार के अन्य अच्छे और सांत्वना देने वाले शब्द कहे जा सकते हैं।

लेकिन यदि मृतक काफ़िर हो, तो उसके लिए यह नहीं कहना चाहिए : "अल्लाह उसे क्षमा करे।" या "अल्लाह उस पर दया करे।" अर्थात यदि मृतक काफ़िर हो, तो उसके लिए मग़फ़िरत (क्षमा) या रहमत (दया) की दुआ नहीं की जाएगी। लेकिन उसके जीवित लोगों के लिए हिदायत, अच्छे बदले और इसी प्रकार की अन्य अच्छी चीज़ों की दुआ की जा सकती है।" उद्धरण समाप्त हुआ।

शैख़ अब्दुल अज़ीज़ बिन बाज़ (रहिमहुल्लाह)

“फ़तावा नूरुन अलद-दर्ब” (1/289–291)